विषय-सूची ।

पूर्वालंकृत प्रकरण।

(१६८१-१७९०)

अट्ठारहवाँ अध्याय।

पूर्वालंकृत हिन्दी।

महात्मा सूरदास और तुलसीदास का समय हिन्दी-साहित्य के लिए जैसा गौरव-पूर्ण हुआ था, वह हम ऊपर देख चुके हैं। हर्ष का विषय है कि गोस्वामीजी के पीछे देवजी पर्य्यन्त यह समय कविता के लिए और भी अधिक महत्त्व का हुआ। उस काल के साथ उत्तम तथा परिपक्क भाषा का जन्म हुआ था और हिन्दी ने अभूतपूर्व सर्वांगपूर्ण चमकती हुई कविता का मुख देखा था। तो भी शैशवावस्था और यौवनावस्था में अन्तर होना स्वाभाविक ही है। इसी नियमानुसार इस काल की भाषा अधिक परिपक्क थी।

इस समय एक अनहोनी सी यह भी हुई कि चिर काल से पददलित और विमर्द्दित हिन्दू जाति ने फिर से सिर उठाया और कई शताब्दियों से विजयी यवनों का साम्राज्य बिगड़ते बिगड़ते ध्वस्त ही हो गया। इसी काल में महाराजा शिवा जी ने बीजापूर, गोलकुंडा और दिल्ली को विमर्द्दित कर के विशाल

महाराष्ट्र राज्य स्थापित किया, इसी काल में महाराजा जसवन्तसिंह ने हिन्दूपन के भाव को जागृत कर के मुग़लों की सेवा करते हुए भी खुल्लमखुल्ला कई बार औरङ्गज़ेब को ज़क दीं और शिवा जी से मिल कर शाइस्ता ख़ाँ की दुर्गति करा डाली, इसी काल में महाराणा राजसिंह ने मुग़लों की अधीनता को लात मार कर छः प्रचंड युद्धों में स्वयं औरङ्गज़ेब को पराजित किया, इसी काल में जसवन्तसिंह के मर जाने पर भी शूरशिरोमणि राठूरों ने ३० वर्षों तक मुग़लों से घोर युद्ध कर के अपने बालक महाराज अजीतसिंह तथा माड़वार राज्य की रक्षा की, इसी काल में चम्पतिराय ने अपने प्रभाव से सारे बुँदेलखंड को दीप्तिमान करके मुग़लों को हिला दिया, इसी काल में महाराजा छत्रसाल ने केवल ५ सवार और २५ पैदलों के ही सहारे से प्रयत्न आरम्भ कर के मुग़लों का सामना किया और धीरे धीरे विजयों पर विजय प्राप्त करते हुए अन्त में दो कोटि वार्षिक आय का विशाल राज्य बुँदेल खंड में और उसके आस पास संस्थापित कर दिया, और इसी अनुपम काल में शौर्य्यमूर्ति बाला जी विश्वनाथ और बाजीराव पेशवा ने मुग़ल साम्राज्य को चकनाचूर कर भारतवर्ष में ५०० वर्षों से खोये हुए आर्य्यसाम्राज्य को फिर से स्थापित किया।

ऐसे दर्पपूर्ण प्रतिभाशाली सुकाल में साहित्य की विशदोन्नति परम स्वाभाविक थी और वह हुई भी। सूर और तुलसीदास के समय में जैसे कृष्ण और राम भक्ति की धारा ने उमड़ कर उत्तरी भारत को पुनीत किया था, उसी प्रकार इस भूषण और देव वाले काल में उत्साह की मूर्ति खड़ी हो गई

श्रौर वीर रस ने हिन्दी-साहित्य को एक बार कुछ समय के लिए इभारोही कर के छत्रमुकुट से सुशोभित कर दिया, मानो वह साक्षात् दीपक राग का प्रतिरूप बन गया। सैार काल के पीछे तुलसीदास के समय जो विविध विषय-वर्णन की परिपाटी चली थी, उसने श्रौर भी पुष्टि पाई श्रौर हिन्दी को सैकड़ों विषयों की पुस्तकों से सर्वांगपूर्ण बनाया । उस काल ने नवरत्नों में तीन रत्न उत्पन्न किये तो इस ने चार प्रकट करके दिखला दिये। नव रत्नों के अतिरिक्त उत्तम कवियों की संख्या इस काल में बहुत अधिक पाई जाती है। वास्तव में प्रथम कक्षा के इतने कवि किसी अन्य समय में नहीं देख पड़ते।

भक्त-शिरोमणि प्राणनाथ, सुन्दरदास, गुरु गोविन्दसिंह, ध्रुव-दास आदि ने इसी समय को पुनीत किया। महात्मा प्राणनाथजी ने पन्ना में रह कर समस्त बुँदेल खंड पर बड़ा विशद प्रभाव डाला श्रौर एक नया पन्थ ही स्थापित कर दिया। सुन्दरदास ने दादू पन्थ को उन्नत किया। गुरु गोविन्द सिंह जी ने भक्ति को शौर्य्य से मिला कर सिक्खों में जातीयता का बीज बोया श्रौर सिक्ख विशाल राज्य की नीव डाली। यदि यह महात्मा संसार में न हो गया होता, तो महाराजा रणजीतसिंहजी को एक ही शताब्दी पीछे इतना विस्तृत साम्राज्य स्थापित करने का सैाभाग्य कभी न प्राप्त होता। इस महात्मा ने हिन्दी-कविता भी बढ़िया की है।

महाराजा जसवन्तसिंह, तत्पुत्र महाराजा अजीतसिंह (दोनों जोधपुरनरेश), महाराजा राजसिंह, महाराजा छत्रसाल (बुँदेल खण्ड के स्वामी), राव राजा बुद्धसिंह (बूँदीनरेश) श्रौर महा-

राजा नागरीदासजी (कृष्णगढ़-नरेश) इस देदीप्यमान काल में प्रसिद्ध कवि और कवियों के कल्पवृक्ष हो गये हैं। महाराजा जसवन्तसिंह का बनाया हुआ "भाषा भूषण" अब तक अलंकार जिज्ञासुओं के गले का हार हो रहा है। वे लोग प्रायः यह ग्रन्थ और कवि कुल कंठाभरण को ही अलंकार समझने के लिए पढ़ते हैं। महाराजा राजसिंह की भी कविता अच्छी होती थी। मान कवि ने महाराणाजी के यहाँ आश्रय पाकर इनके चरित्रवर्णन में राजविलास नामक सुविशाल ग्रन्थ बनाया, जो नागरी-प्रचारणी ग्रन्थ-माला में छप रहा है। महाराजा छत्रसाल की कविता ऐसी मनोहर होती थी, जैसी कि सुकवियों की होती है। इनका एक ग्रन्थ बुँदेलखण्ड में एक धामी के पास वर्त्तमान है, परन्तु वह उसे किसी को दिखाता भी नहीं। ये महाराज ऐसे गुणग्राहक थे कि इतने बड़े राजा होने पर भी इन्होंने एक बार भूषण की कविता से प्रसन्न हो कर उनकी पालकी का डंडा अपने कन्धे पर रख लिया था। लाल कवि ने इन्हीं के यश-कीर्त्तन में प्रसिद्ध ग्रन्थ छत्रप्रकाश बनाया। इनके दरबार में सैकड़ों कविगण जाते और आदर पाते थे। भूषण और हरिकेश के समान उद्दंड सत्कवि, नेवाज जैसे शृंगारी, और लाल के ऐसे कथा-प्रासंगिक प्रबल लेखक, सभी इस पारिजात की उदारता के साक्षी हैं। जितने सत्कवियों की बनाई हुई इस महाराजा की प्रशंसा मिलती है, उनके आधे भी सरस्वती सेवियों ने किसी भी राजा महाराजा की विरदावली का गान नहीं किया है। एक और भी कथनीय बात है कि इन्होंने प्रायः परमोत्तम कवियों का ही विशेष मान किया, जिस से इन की साहित्यपटुता प्रकट होती है। राव राजा

बुद्धसिंह भी कवियों के प्रसिद्ध आश्रयदाता थे। महाकवि मतिराम इन्हीं के यहाँ रहते थे, और भूषण तथा कवीन्द्र ने भी इन की प्रशंसा के छन्द कहे हैं। यह भी उत्कृष्ट कवि और गुणग्राहक थे। महाराजा नागरीदास के विषय में यहाँ कुछ कहना व्यर्थ है। इनके साहित्य और गुणों का वर्णन इस अध्याय में यथा स्थान कुछ विस्तृत रूप से मिलेगा। महाराजा शिवा जी ने भी भूषण ऐसे प्रसिद्ध कवि को आश्रय देकर अपनी गुणग्राहकता दिखाई। जैपुर के महाराजा जयसिंह ने विहारीलाल का समादर किया था। इन महाराजाओं के अतिरिक्त अन्य राजा महाराजाओं ने भी कवियों को आश्रय दिया, जिसका वर्णन उन कवियों के साथ मिलेगा। इन में शाहजहाँ, औरङ्गज़ेबात्मज आज़म शाह, अकबर अलीख़ाँ, क़मरुद्दीन ख़ाँ आदि मुसलमान महाशय भी परिगणित हैं।

भाषा-साहित्य के आचार्य्य भी इस काल में बहुत हो गये, जिन में देव, भूषण, मतिराम, चिन्तामणि, श्रीपति, कवीन्द्र, महाराजा जसवन्तसिंह, सूरति मिश्र, रसलीन, कुलपति और सुखदेव मिश्र प्रधान हैं। सबल कविता करने वालों में इस काल के बैताल, लाल, भूषण और हरिकेश अगुआ हैं, और प्रेमियों में नेवाज, शेख़ और आलम मुख्य माने जाते हैं। घाघ ने मोटिया नीति ग्रामीण भाषा में कही है। गद्य काव्य सूरति मिश्र ने रची, और कृष्ण तथा सूरति से टीकाओं की प्रणाली फिर से चलती है। उर्दू और फ़ारसी के तलाज़मे यदि हिन्दी में कहीं पाये जाते हैं, तो विहारी आदि में। देव जी ने तो मानों सभी कुछ कहा और भाषा की वह अभूत पूर्व उन्नति की, जो दर्शनीय है। जैसी सोहावनी

भाषा का प्रयोग देव और मतिराम ने किया है वैसी हिन्दी किसी काल वाले किसी कवि ने नहीं लिख पाई।

इस समय अन्य विषयों के अतिरिक्त शृंगार काव्य ने बहुत उन्नति की और नायिका भेद के ग्रन्थ बनाने की परिपाटी सी पड़ गई। अलंकार, षट्ऋतु आदि के ग्रन्थों एवं रीति की पुस्तकों में भी शृंगार रस का ही महत्त्व क्रमशः होगया। यद्यपि इस काल में शौर्य्य का प्राधान्य भारतवर्ष में रहा और अच्छा समय था कि कवियों का चित्त शृंगार से उचट कर वीर काव्य में लग जाता, पर शृंगार कविता की नीव हिन्दी में ऐसी दृढ़ हो चुकी थी कि वीर कविता के होने पर भी कवियों एवं उनके आश्रयदाताओं का ध्यान शृंगार की ओर से न हटा और वीर एवं शृंगार दोनों रसों की कविता अब भी पूर्ण रीति से होती रही। इस समय भारत में बहुत से वीर पुरुष वर्त्तमान थे। उनके प्रोत्साहन से वीर कविता ने अच्छा आदर पाया और शौर्य्य वर्णन के ग्रन्थों की मात्रा-वृद्धि भी ख़ूब हुई, पर इसके पीछे देश में कादरता बहुत बढ़ी, सो कुछ दिनों में वीर-ग्रन्थों का मान अच्छा न रहा। इस कारण ऐसे बहुत से ग्रन्थ नष्ट हो गये और बहुत से जहाँ के तहाँ दबे पड़े हुए हैं। यही कारण है कि हिन्दी में वीर-ग्रन्थों का बाहुल्य होते हुए भी वह बहुधा देखने में नहीं आते और शृंगार ग्रन्थों से ही भाषा-कविता भरी हुई जान पड़ती है।

प्रौढ़ माध्यमिक काल में प्राचीन दबी हुई कथा-प्रासंगिक प्रणाली की उन्नति न हुई। इसके आदि में स्वयं सूरदास, क़ुतवन, एवं जायसी ने कथायें कहीं, पर अन्य किसी सुकवि ने ऐसा न . । पीछे से नरोत्तमदास, तुलसीदास एवं केशवदास ने कथा-

प्रासंगिक ग्रन्थ रचे, परन्तु किसी अन्य सुकवि का ध्यान इस ओर न गया। इन कथाओं में मुसलमान कवियों ने तो साधारण विषयों का आदर किया, परन्तु शेष कवियों ने राम या कृष्ण को ही प्रधान रक्खा। उस समय के बहुत से भक्त सुकवियों ने विशेषतया कृष्ण-भक्ति-पूर्ण स्फुट छन्दों एवं पदों हीं पर सन्तोष किया।

इस पूर्वालंकृत काल में भक्तिपूर्ण कथा प्रासंगिक साहित्य में ऊनता हुई और केवल छत्र तथा सबलसिंह ने महाभारत का कथन किया, परन्तु इन ग्रन्थों में भी भक्तिप्रचुरता नहीं पाई जाती। सेनापति एवं देव ने भी कुछ कुछ कथाप्रसङ्ग चलाया है, परन्तु उन्होंने कथा का डोर इतना पतला, तथा कोरे काव्योत्कर्ष पर इतना अधिक ध्यान रक्खा है कि उन्हें कथा-प्रासंगिक कवि कहना नहीं फबता। सुकवियों में धर्म से सम्बन्ध न रखने वाली कथायें नेवाज, लाल, एवं सूरति ने कहीं। सो इस समय में कथा-प्रसङ्ग का विशेष बल नहीं हुआ, परन्तु फिर भी लाल के होते हुए यह विभाग हीन नहीं कहा जा सकता। धर्म्मप्रचारकों में इस काल केवल स्वामी प्राणनाथ एवं गुरु गोविन्दसिंह थे, सो धर्म्म-चर्चा का भी बाहुल्य न था। भक्त कवियों में सुन्दर, ध्रुवदास, नागरीदास एवं सेनापति प्रधान थे। इन नामों से प्रकट है कि इस समय भक्ति कविता का प्राधान्य बिल्कुल न था, और शृङ्गार तथा वीर रसों हीं ने साहित्य पर पूरा प्रभाव डाला।

इस काल का सर्वप्रधान गुण यह है कि इस के कवियों ने भाषा को अलंकृत करने में पूरा बल लगाया। प्रौढ़ माध्यमिक काल में भाषा भलीभाँति परिपक्क हो चुकी थी, अतः पूर्वालंकृत

काल में कवियों ने हिन्दी को भाषा-सम्बन्धी आभरणों से सुसज्जित करना आरम्भ किया। इस प्रकार भाषा श्रुतिमधुर एवं सुष्ठु होने लगी। फिर भी ये कविगण भाव बिगाड़ कर भाषा लालित्य लाने का प्रयत्न नहीं करते थे।

सारांश यह कि इस काल में भाषा अलंकृत हुई, वीर एवं शृङ्गार की वृद्धि रही, आचार्य्यता में परिपक्वता आई, भक्ति एवं कथा-प्रसंग शिथिल पड़े और काव्योत्कर्ष की सन्तोषदायक उन्नति हुई। यह समय हिन्दी के लिए बड़े गौरव का हुआ।

उन्नीसवाँ अध्याय।

(२७८) महाकवि सेनापति।

(१६८१)

महात्मा तुलसीदास के पीछे हिन्दी में छः महाकवि थोड़े ही समय में हुए, अर्थात् सेनापति, बिहारीलाल, भूषण, मतिराम, लाल, और देव। इन सत्कवियों की पीयूषवर्षिणी वाणी ने हिन्दी जानने वाले संसार को पूर्णतया आप्यायित कर दिया और हिन्दी भंडार को ख़ूब परिपूर्ण किया। इनमें से सेनापति और लाल प्रथम श्रेणी के कवि हैं और शेष चार तो नवरत्न में परिगणित हुए हैं। हिन्दी-कविता के लिए इतने गौरव का कोई अन्य समय [illegible] से ठहरेगा। इस अध्याय में हम इन्हीं कवियों में से प्रथम वर्णन कुछ विस्तार के साथ करते हैं।

सेनापति दीक्षित कान्यकुब्ज ब्राह्मण परशुराम के पौत्र और गंगाधर के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम हीरामणि था। सेनापतिजी गंगातट के वासी थे। जान पड़ता है कि इनका जन्म संवत् १६४६ के इधर उधर हुआ होगा। इन्हों ने अपना कवित्तरत्नाकर नामक ग्रन्थ संवत् १७०६ में सम्पूर्ण किया। इस ग्रन्थ में इन्होंने लिखा है कि मेरे केश श्वेत हो गये हैं, मैं बुड्ढा हो गया हूँ और अब चाहता हूँ कि इस असार संसार को छोड़ कर कृष्णानन्द में मग्न रहूँ और व्रज के बाहर न निकलूँ। इससे विदित होता है कि ये उस समय साठ वर्ष से कम न होंगे। इसी के पीछे यह क्षेत्र-संन्यास ले कर वृन्दावन में रहने लगे। क्षेत्र-संन्यास का यह भी अर्थ है कि संन्यासी अपने निवासस्थान के बाहर न जावे। अतः विदित होता है कि यह महाकवि अपनी इच्छा को पूर्ण रूप से प्राप्त करने में समर्थ हुआ था। इनके मृत्यु-संवत् का हमें कोई पता नहीं लगा। ये महाराज पूर्ण कवि होने के अतिरिक्त पूरे भक्त भी थे। इनके निर्मल चरित्र और ऊँचे एवं विशुद्ध विचार औरों को उदाहरण-स्वरूप हैं। सूरदास और तुलसीदास जी की भाँति सेनापति भी पूरे ऋषि थे।

शिवसिंहजी ने लिखा है कि इनका 'काव्यकल्पद्रुम' नामक एक ग्रन्थ है और हज़ारा में इनके बहुत से छन्द मिलते हैं। हमारे पास काव्यकल्पद्रुम एवं हज़ारा नहीं हैं, परन्तु पंडित युगुलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में इनका 'कवित्तरत्नाकर' नामक ग्रन्थ वर्त्तमान है, जो इस समय हमारे पास उपस्थित है। पंडित नकछेदी तिवारी ने सेनापति के एक तृतीय ग्रन्थ षट्-ऋतु का नाम लिखा

है, परन्तु यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, वरन, कवित्तरत्नाकर का एक तरंग मात्र है।

कवित्तरत्नाकर का संवत् सेनापति ने यों लिखा है:—

सम्बत् सत्रह सै छ मैं सेइ सिया पति पाय।
सेनापति कविता सजी सज्जन सजौ सहाय॥

इस ग्रन्थ में पाँच तरंग हैं। प्रथम में ९४ छंद हैं और उसमें श्लेष कविता तथा रूपकों का कथन है। द्वितीय तरंग में ७४ छन्दों द्वारा शृंगार रस की कविता है, एवम् तृतीय में ५६ छन्दों द्वारा षटऋतु का वर्णन किया गया है। चतुर्थ तरंग में ७६ छंद हैं और उसमें रामायण का विषय वर्णित है तथा पंचम तरंग में ५७ छन्दों द्वारा भक्ति और शेष २७ छन्दों द्वारा चित्र कविता कही गई है। सेनापतिजी ने निम्न छन्दों द्वारा अपना परिचय दिया है और अपनी कविता की प्रशंसा भी की है:—

दीक्षित परशुराम दादो है विदित नाम
जिन कीने यज्ञ जाकी जग मैं बड़ाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाके
गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है॥
महा जान मनि विद्या दान हूते चिंतामनि
हीरामनि दीक्षित ते पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कबि कान दै सुनत कविताई है॥

मूढ़न को अगम सुगम एक ताको जाकी
तीखन बिमल बिधि बुद्धि है अथाह की ।
कोई है अभंग कोई पद है सभंग
सोधि देखे सब अंग सम सुधा परवाह की ॥
ज्ञान के निधान छंद कोष सावधान
जाकी रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी ।
सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई
जाकी द्वै अरथ कविताई निरबाह की ॥

दोष सों मलीन गुनहीन कविताई है
तो कीने अरवीन परबीन कोई सुनि है ।
बिनुही सिखाए सब सीखिहैं सुमति
जोपै सरस अनूप रस रूप या मैं धुनि है ॥
दूषन को करिको कबित्त बिनु भूषन को
जोकरै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुर मुनिहै ।
राम अरचतु सेनापति चरचतु दोऊ
कबित रचतु याते पद चुनि चुनि है ॥

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन को
बुध कवि के जो उपकंठहि बसति है ।
जोपै पद मन को हरख उपजावत है
तजै को कुनर सै जो छंद सरसति है ॥
अच्छर हैं बिसद करत ऊखै आपुस मैं
जाते जगती की जड़ताऊ बिनसति है ।

मानो छबि ताकी उदवत सबिता की
सेनापति कबि ताकी कबिताई बिलसति है ॥
तुकनि सहित भले फैल को धरत सूधे
दूरि को चलत जे हैं धीरजिय ज्यारी के।
लागत बिबिधि पच्छ सोहत है गन संग
श्रवन मिलत मूठि कीरति उज्यारी के ॥
सोई सीस धुनै जाके उर मैं चुभत नीके
बेगि बिधि जात मन मोहै नरनारी के।
सेनापति कबि के कबित्त बिलसत अति
मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के ॥
बानी सों सहित सुबरन मुँह रहै जहाँ
धरत बहुत भांति अरथ समाज को।
संख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक या मैं
राखो मति ऊपर सरस ऐसे साज को ॥
सुनो महाजन चोरी होति चारि चरन की
ताते सेनापति कहै तजि उर लाज को।
लीजियो बचाइ ज्यों चुरावै नाहिँ कोई सैांपी
बित्त कीसी थाती मैं कबित्तन के ब्याज को ॥

"सेनापति बरनी है बरखा सरद रितु मूढ़न को अगम सुगम परबीन को"।

शिवसिंहजी निम्न वाक्यों द्वारा सेनापति जी की प्रशंसा करते हैं:—"काव्य में इनकी प्रशंसा हम कहाँ तक करें अपने समय के भानु थे"।

ये छन्द देखने से जान पड़ता है कि इन्होंने अपनी कविता की बहुत बड़ी प्रशंसा कर डाली है, परंतु हमारा मत है कि इनकी प्रायः कुल दर्पोक्तियों से भी इनकी पूरी प्रशंसा नहीं हो सकी है। इनको कविजन केवल इसी कारण बहुत कम जानते हैं कि इन्हों ने चोरी हो जाने के डर से अपनी कविता छिपा डाली थी और इनका कोई भी ग्रंथ अब तक मुद्रित नहीं हुआ।

सेनापति की भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है, परंतु दो एक छन्दों में इन्होंने प्राकृत मिश्रित भाषा भी कही है। इनकी कविता में मिलित वर्ण बहुत ही कम आने पाये हैं और उसमें अनुप्रास व यमक का बाहुल्य है। ऐसी उत्तम भाषा सिवा बड़े बड़े कवियों के और कोई लिखने में समर्थ नहीं हुआ। इनकी भाषा का उदाहरण-स्वरूप एक छंद नीचे लिखा जाता है।

दामिनी दमक सुर चाप की चमक स्याम
　　　　घटा की घमक अति घोर घन घोरते।
कोकिला कलापी कल कूजत है जित तित
　　　　सीतल है हीतल समीर झकझोरते॥
सेनापति आवन कह्यो है मनभावन
　　　　लगो है तरसावन बिरह जुर जोर ते।
आयो सखि सावन बिरह सरसावन
　　　　सु लागो बरसावन सलिल चहुँ ओर ते॥

सेनापति जी को रूपकों से विशेष प्रेम था। इनकी रचना में जहाँ देखिए वहीं रूपक बाहुल्य है।

ये उपमायें भी अच्छी खोज खोज कर कहते थे। इनको श्लेष कविता बहुत प्रिय थी और इसके उदाहरण ग्रंथ में हर जगह प्रस्तुत हैं। उत्तम उपमा के उदाहरण स्वरूप तृतीय तरंग के छंद नं० २८ तथा ३५ एवं चतुर्थ तरंग का छन्द नं० २९ द्रष्टव्य है।

इनका षटऋतु बहुत ही चित्ताकर्षक बना है। इसको इन्हों ने केवल उद्दीपन का मसाला न बनाकर इसमें प्राकृतिक शोभा का बड़ा विलक्षण वर्णन किया है और एक अध्याय भर में इसी का समा बँधा है। भाषा काव्य में प्रकृति-वर्णन का कुछ कुछ अभाव सा देख पड़ता है, परन्तु सेनापति जी ने इस अभाव को पूर्ण करने का अच्छा प्रयत्न किया है। इनके प्राकृतिक वर्णन बहुत ही सुघर और अनूठे होते हैं। हमारे मत में देव को छोड़ भाषा के किसी कवि ने षटऋतु का ऐसा विशद वर्णन नहीं किया है। उदाहरणार्थ दो छंद ग्रीष्म और वर्षा के लिखते हैं। इनकी कविता में उद्दण्डता का भी प्रधान गुण है। उस में प्रत्येक स्थान पर इनकी आत्मीयता झलकती है। आपने प्रायः कहीं भी किसी दूसरे का असाधारण भाव नहीं ग्रहण किया और न किसी संस्कृत श्लोक का ही उलथा या भाव लिया है। इनकी कविता इन्हीं की कविता है और सब इन्हीं के मस्तिष्क से निकली है।

उदाहरण।

बालि को सपूत कपिकुल पुरहूत रघुबीर
जू को दूत धरि रूप विकराल को।

युद्ध मद गाढ़ो पाउँ रोपि भयो ठाढ़ो
सेनापति बल बाढ़ो रामचंद भुवपाल को॥
कच्छप कहलि रह्यो कुंडली टहलि रह्यो
दिग्गज दहलि त्रास परो चक चाल को।
पाँव के धरत अति भार के परत भयो
एक ही परत मिलि सपत पताल को॥

वृष को तरनि तेज सहसौ करनि तपै
ज्वालनि के जाल विकराल बरसत है।
तचति धरनि जग झुरत झुरनि सीरी
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है॥
सेनापति नेक दुपहरी ढरकत होत
धमका विषम जो न पात खरकत है।
मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि कौनो
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है॥

सेनापति उनए नए जलद सावन के
चारि हू दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहू भांति
आने हैं पहार मनो काजर के ढोय कै॥
घन सों गगन छप्यो तिमिर सघन भयो
देखि न परत मानो गयो रवि खोय कै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम मानि
मेरे जान याही ते रहत हरि सोय कै॥

बिना षट ऋतु का पूरा वर्णन पढ़े उसका ठीक अनुभव नहीं हो सकता।

उद्दण्डता के साथ ही साथ सेनापति ने अपनी रचना में कठिनता की मात्रा भी बढ़ा रक्खी है। उनको इस बात का शौक़ था कि मूर्ख उनकी कविता को न समझ सकें, जैसा उन्हों ने कहा है कि "सेनापति बरनी है बरखा सरद रितु मूढ़न को अगम सुगम परबीन को"।

सेनापति ने स्वयं लिखा है कि उन्हों ने अपनी कविता के पद चुन चुन कर रक्खे हैं। अतः यदि कोई इनकी कविता में कोई बुरा अथवा शिथिल छंद ढूँढना चाहे, तो उसको व्यर्थ का श्रम उठाना पड़ेगा। इनके सभी छंद उत्कृष्ट हैं। अच्छे छंदों के उदाहरण में यहाँ एक छंद देते हैं।

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो
　　　　आई रितु पावस न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी सुदरकी
　　　　सुहागिनि की छोह भरी छतियाँ॥
आई सुधि बर की हिए में आनि खरकी सुमिरि
　　　　प्रान प्यारी वह प्रीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की लाल मन भावन की
　　　　डग भईं बावन की सावन की रतियाँ॥

इनकी कविता में प्रत्येक स्थान पर इनकी तल्लीनता देख पड़ती है। इस कवि की समस्त कविता सच्ची है। इसने प्रायः न कहीं किसी दूसरे का भाव लिया है और न अपने चित्त के प्रतिकूल कोई बात लिखी है। इनकी तल्लीनता निम्न चार पदों से प्रकट होगी :—

दीन बंधु दीन के न बचन करत कान मौन ह्वै
रहे हौ कछु भाँति मन माखे हौ।
याते राजा राम जगदीस जिय जानी जाति
मेरे क्रूर करम कृपाल कीलि राखे हौ॥
क्योंरे कलि काल मोहिँ कालौ ना निदरि सकै तें तौ
मति मूढ़ अति कायर गँवार को।
सेनापति निरधार पाँयपोस बरदार हौं तौ
राजा रामचन्द्र जू के दरबार को॥

यह कवि अपनी धुन का इतना पक्का था कि इसको सवैया छंद पसंद न होने के कारण इस ने एक भी सवैया अपने काव्य में नहीं रक्खा। चोरी होने के डर से इनको अपने प्रत्येक छंद में नाम रखना बहुत ज़रूरी समझ पड़ता था और सवैया में इनका नाम नहीं आ सकता था। शायद इसी कारण सवैया इन्हों ने न लिखा हो।

इनकी प्रगाढ़ भक्ति भी इनके जीवन का एक प्रधान गुण है। सेनापति की कविता में उनके विचार भरे पड़े हैं। अपने विषय इतनी बातें भाषा के बहुत कवियों ने न कही होंगी। इनकी भक्ति पंचम

तरंग के छन्द नम्बर ९, १३, १६ और ३१ से विदित होती है, वरन यें कहें कि चतुर्थ और पंचम तरंग भर से भक्ति टपकी पड़ती है। सेनापति की भक्ति सूरदास और तुलसीदास की भक्ति से शायद कुछ ही कम हो। उदाहरणार्थ केवल एक छन्द नीचे उद्धृत करते हैं:—

ताही भाँति धाऊँ सेनापति जैसे पाऊँ
तन कंथा पहिराऊँ करौं साधन जतीन के।
भसम चढ़ाऊँ जटा सीस मैं बढ़ाऊँ
नाम वाही को पढ़ाऊँ दुखहरन दुखीन के॥
सबै बिसराऊँ उर तासों उरझाऊँ
कुंज बन बन धाऊँ तीर भूधर नदीन के।
मन बहिराऊँ मन मनहिँ रिझाऊँ
बीन लैकै कर गाऊँ गुन वाही परबीन के॥

आप के निर्मल विचारों और पुनीत जीवन का कुछ कुछ परिचय पंचम तरङ्ग के छन्द नं० १०, ११ और ४० से भी मिलता है। इनसे यह भी जान पड़ता है कि आप के बाल सफ़ेद हो गये थे और अवस्था आधी से अधिक बीत गई थी। कोई मनुष्य पचास वर्ष से ऊपर हुए बिना साधारणतः यह कभी नहीं कह सकता कि मेरी आयु आधी से अधिक बीत गई है। इसीसे हमारा विचार है कि जिस समय यह ग्रन्थ इन्हों ने समाप्त किया, उसी समय इनकी अवस्था प्रायः ६० बरस की होगी। छन्द नं० ४७ से यह भी जान पड़ता है कि ये महाशय बादशाही नौकर थे, क्योंकि उस छंद के बनाते समय इनको उससे अश्रद्धा हो चुकी थी। यथा:—

केतो करौ कोय पैये करम लिखोय ताते
दूसरी न होय उर सोय ठहराइए।
आधी ते सरस बीति गई है बरस अब
दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइए॥
चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइए।
चारि बरदानि तजि पाय कमलेछन के
पायक मलेछन के काहे को कहाइए॥

इनके चित्त का पूर्ण वैराग्य निम्न लिखित छन्द से पूरा प्रकट होता है और यह भी मालूम पड़ता है कि यह कंगाल नहीं थे। यथा :—

महा मोह कंदनि मैं जगत जकंदनि मैं
दिन दुख दंदनि मैं जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को
सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै॥
आवै मन ऐसी घर बार परिवार तजौं
डारौं लोकलाज के समाज बिसराय कै।
हरि जन पुंजनि मैं वृन्दाबन कुञ्जनि मैं
रहौं बैठि कहूँ तर वर तर जाय कै॥

ठाकुर शिवसिंह जी ने लिखा है कि इन्हों ने क्षेत्र-संन्यास ले लिया था। इनकी कविता से ज्ञात होता है कि ये क्षेत्र-संन्यास लेना भी चाहते थे, क्योंकि ये वृन्दावन की सीमा के बाहर जाना नहीं चाहते थे।

पान चरनामृत को गान गुन गानन को
हरि कथा सुने सदा हिये को हुलसिबो।
प्रभु के उतीरन की गूदरी औ चीरन की
भाल भुज कंठ उर छापन को लसिबो॥
सेनापति चाहत है सकल जनम भरि
बृन्दावन सीमा ते न बाहेर निकसिबो।
राधा मन रञ्जन की सोभा नैन कंजन की
माल गरे गुंजन की कुंजन को बसिबो॥
बारानसी जाय मन करनी अन्हाय मेरो
शंकर सों राम नाम पढ़िवे को मन है॥

इतने बड़े भक्त और कड़े विचारों के मनुष्य होने पर भी सेनापति कोमल भावों के वर्णन में भी पूर्णतया समर्थ हुए हैं। महादेवजी की आज्ञा पाकर बहुत से गण कुम्भ करण के कटे हुए शिर को उठाने गये, उसके वर्णन में सेनापति ने हास्यरस ख़तम कर दिया है।

जोर कै उठायो जुरि मिलि कै सबन त्योंहीं
गिरिहूते गरुवो गिरो है उगुलाय कै।
हाली भुव गगन को चाली चपि चूर भयो
काली भाजी हँस्यो है कपाली हहराय कै॥

इतने बड़े भक्त होने पर भी सेनापति धार्म्मिक विषयों तक में स्वतन्त्र विचार रखते थे। इन्होंने प्रथम तरंग में कलि के गोसाइयों को पूरे भिखमंगे बताया है। पंचम तरङ्ग में कई धार्म्मिक विषयों

पर इस ऋषि की स्वतन्त्र अनुमतियाँ द्रष्टव्य हैं, जिनमें से कुछ यहाँ लिखी जाती हैं।

आपने करम करि हैांहीं निबहैांगो
　　तौब हैांहीं करतार करतार तुम काहे के॥
धातुसिला दारु निरधारु प्रतिमा को
　　सारु सो न करतारु है विचारु बैठि गेहरे।
करु न सँदेह रे कहे मैं चित देह रे
　　कही है बीच देह रे कहा है बीच देहरे॥
तोरि मरौ पाउँ करौ कोरिक उपाउ सब
　　होत है अपाउ भाउ चित को फलतु है।
हिये न भगति जाते होइ नभ गति जब
　　तीरथ चलत मन ती रथ चलतु है॥

सेनापति के गुण-दोष हम यथाशक्ति ऊपर दिखा चुके। बड़े शोक का विषय है कि इस ऋषि के केवल ३८४ छन्दों का एक ग्रन्थ हमें देखने को मिला। इतनी सजीव कविता हमने बहुत ही थोड़े कवियों की देखी है। प्रत्येक छन्द में सेनापति का रूप देख पड़ता है। इतने कम छन्दों में इतने विचार भर देने में बहुत कम लोग समर्थ हुए होंगे। अपने ग्रन्थ में सेनापति ने कोई ख़ास क्रम नहीं रक्खा है। जान पड़ता है पहले ये महाशय स्फुट कविता बनाते गये हैं और फिर इन्हों ने संवत् १७०६ में उसे एकत्र करके ग्रन्थस्वरूप में परिणत कर दिया। इनका काव्य कल्पद्रुम भी अवश्य ही उत्तम होगा। अनुमान से जान पड़ता है कि 'कालिदास हज़ारा' में लिखे हुए इनके स्फुट छन्द कवित्तरत्ना-

कर के ही होंगे, क्योंकि इस ग्रन्थ में सब स्फुट कविता ही भरी है। दुर्भाग्यवश अभी इनका एक भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है। यदि भाषा का कोई भी अमुद्रित ग्रन्थ प्रकाशित होने की योग्यता रखता है, तो सेनापति के ग्रन्थ सब से पहले नम्बर पर हैं।

नवरत्न में केशवदास के वर्णन में हम ने संस्कृत और भाषा-साहित्य की प्रणाली का कथन किया है। सेनापति की रामायण काव्यसम्बन्धी प्रथा की है। सेनापति ने ऐसी सजीव, अनूठी, सच्ची, और मनमोहनी कविता की है कि कुछ ही महाकवियों को छोड़ शेष सभी कवि-समाज को इन्हें वास्तविक सेनापति बरबस मानना ही पड़ता है। सेनापति जी की गणना कवियों की प्रथम कक्षा में है और उस में भी ये महाशय प्रायः सर्वोत्कृष्ट हैं।

बीसवाँ अध्याय।

सेनापति-काल।

(१६८१ से १७०६)

इस अध्याय में हम सेनापति के समय वाले कवियों का वर्णन समयानुसार करेंगे।

[२७९] ध्रुवदास।

हमारे मित्र बाबू राधाकृष्णदास ने वल्लभाचार्यीय संप्रदाय एवं भक्त कवियों के इतिहास प्राप्त करने में बहुत श्रम किया था,

ग्रैार इस विषय के कितने ही ग्रंथ संपादित करके उन्होंने नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा तथा अन्य प्रकार से प्रकाशित कराये। उनका यह श्रम बहुत ही प्रशंसनीय ग्रैार उनके विचार माननीय हैं। इन्हीं महाशय ने ध्रुवदास की भक्त नामावली को भी नागरी-प्रचारिणी ग्रंथमाला में प्रकाशित कराया। यह केवल १० पृष्ठों का ग्रंथ है, परंतु टिप्पणी व मुखबंध इत्यादि मिला कर बाबू साहेब ने इसे ८८ पृष्ठों में मुद्रित किया है। यह लेख उन्हीं के विचारों के आधार पर लिखा गया है।

ध्रुवदास ने निम्न लिखित छोटे छोटे ग्रंथ निर्माण किये:—

बानी, वृन्दाबनसत, सिंगारसत, रसरत्नावली, नेहमंजरी, रहसिमंजरी, सुखमंजरी, रतिमंजरी, वनविहार, रंगविहार, रसविहार, आनंददशाविनोद, रंगविनोद, निर्तबिलास, रंग हुलास, मानरसलीला, रहसिलता, प्रेमलता, प्रेमावली, भजनकुंडली, बावन-बृहत्पुराण की भाषा, भक्तनामावली, मनसिंगार, भजन सत, सभामंगल श्रृंगार, मनशिक्षा, प्रीतिचैावनी, मानविनोद, ब्यालिस बानो, रसमुक्तावली, ग्रैार सभामंडली। इनमें सभामंडली संवत् १६८१ में, बृन्दाबन सत १६८६ में, ग्रैार रहसिमंजरी संवत् १६९८ में बनीं। शेष ग्रंथों का समय नहीं दिया है। राससर्वस्व से विदित होता है कि ध्रुवदास जी रासलीला के बड़े अनुरागी एवं करहली ग्राम वाले रासधारियों के बड़े प्रेमी थे। भक्तनामावली में ध्रुव-दास ने १२३ भक्तों के नाम ग्रैार उनके कुछ कुछ चरित्र लिखे। बाबू राधाकृष्णदास ने उनमें से प्रत्येक के विषय धर्मग्रन्थों ग्रैार इतिहासों में जो कुछ मिलता है, उसको बड़े परिश्रम से इस ग्रंथ

के नोट में दे दिया है। इन्होंने अपनी कविता ब्रज भाषा में की है और वह अच्छी है। इन का काव्य भक्ति पूर्ण और सरस है। भक्तनामावली से कुछ छंद नीचे दिये जाते हैं:—

हित हरि बंसहि कहत ध्रुव बाढ़ै आनँद बेलि।
प्रेम रँगी उर जगमगै जुगुल नवल बर केलि॥
निगम ब्रह्म परसत नहीं सो रस सब ते दूरि।
किया प्रगट हरिबंस जी रसिकन जीवन मूरि॥
पति कुटुंब देखत सबनि घूंघुट पट दिय डारि।
देह गेह बिसरयौ तिन्हैं मोहन रूप निहारि॥

खोज में इन के निम्न लिखित ग्रन्थों का पता और चला है:—

रसानंदलीला, (२) ख्यालहुलासलीला, (३) सिद्धान्तविचार, (४) रसहीरावली, (५) हितसिंगारलीला, (६) ब्रजलीला, (७) आनंदलता, (८) अनुरागलता, (९) जीवदशा, (१०) वैद्यक लीला, (११) दानलीला, और (१२) ब्याहलो।

इनके ब्यालीस लीला, बानी और पदावली ग्रन्थ हम ने छतरपूर में देखे। ये उपरोक्त नामावली में नहीं हैं। बानी में ब्रजभाषा द्वारा शृंगार रस के सवैया, कवित्त इत्यादि तथा अन्य छन्दों में श्री कृष्णचंद्र जी की लीलाओं के वर्णन ३०० पृष्ठ फूलसकैप साइज़ पर बड़े ही सरस तथा मधुर किये गये हैं। इनकी कविता बड़ी मधुर और प्रशंसनीय है। हम इन्हें तोष की श्रेणी का कवि समझते हैं।

उदाहरण।

सेज सरोवर राजत हैं जल मादक रूप भरे अरुनाई ।
अंगन आभा तरंग उठैं तहँ मीन कटाच्छन की चपलाई ॥
प्यासी सखी भरि अंजुलि नैन पियें सिगरी उपमा ध्रुव पाई ।
प्रेम गयंदनि डारे हैं तोरि कै कंजन केल चहूँ दिसि माई ॥

जीव दसा कछु यक सुनि भाई, हरि जस अमृत तजि विष खाई ।
छिन भंगुर यह देह न जानी, उलटी समुझि अमर ही मानी ॥
घर घरनी के रँग यों राच्यो, छिन छिन मैं नट कपि ज्यों नाच्यो ।
बय गै बीति जात नहिँ जानी, जिमि सावन सरिता को पानी ॥
माया सुख मैं यों लपटान्यो, बिपय स्वाद ही सरबसु जान्यो ।
काल समय जब आनि तुलानो, तन मन की सुधि तबै भुलानो ॥

ध्रुवदास जी स्वप्नद्वारा हितहरिवंश के शिष्य हुए थे । ये सदैव उन के शिष्य रहे और माने गये ।

(२८०) स्वामी चतुर्भुजदास जी अष्टछाप वाले इसी नाम के कवि से पृथक् हैं । उनका समय १६२५ था और इनका सं० १६८४ । इनके बनाये हुए धर्म्मविचार (४० पद), बानी (६८ पद), भक्तप्रताप (१५ पद), सन्तप्रसाद (१८ पद), सिच्छासार (५६ पद), हितउपदेश (४६ पद), पतितपावन (१४ पद), मोहनीजस (२० पद), अनन्यभजन (४२ पद), राधाप्रताप (२२ पद), मंगलसार (४२ पद), और विमुख सुखभंजन (३४ पद) नामक ग्रन्थ हमने छत्रपूर में देखे हैं । इन ग्रन्थों में पदों हीं में वर्णन हैं । द्वादश-यश भी इन्हीं की एक रचना है । हम इन्हें साधारण श्रेणी में रक्खेंगे ।

उदाहरण।

मन ते तन नीचो अति कीजै, देह अमान मानता दीजै।
सहन सुभाव वृक्ष को सो करि, रसना सदा कहत रहिये हरि॥
वृषभ वृक्ष पर पाँव न दीजै, क्रीड़ा अर्थ न नीर तरीजै।
आगि गाँव बन में न लगावै, भोजन जल न अनर्पित पावै॥

नाम—(२८१) व्यास जी ओड़छावाले।

ग्रन्थ—(१) श्रीमहाबाणी (१३५ पृष्ठ), (२) पद (४८ पृष्ठ), (३) नीति के दोहे, (४) रागमाल, (५) पदावली।

कविता-काल—१६८५

वृत्तान्त—इनके छन्द हज़ारा में मिलते हैं। ये साधारण श्रेणी के कवि थे। इनके १ व २ ग्रन्थ छत्रपूर में हमने देखे। इनको हर-व्यास देव भी कहते थे। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के थे।

उदाहरण।

भगति बिन अगति जाहु गे बीर।
बेगि चेति हरि चरन सरन गहि छांड़ि विषै की भीर।
कामिनि कनक देखि जनि भूलै। मन में धरियो धीर॥
साधुन की सेवा करि लीजै। जब लैां जियत सरीर।
मानुस तन बोहित करिया हरि गुन अनुकूल समीर॥

नाम—(२८२) खीमराज चारण ग्राम खीमपुरा उदयपुर।

ग्रन्थ—फुटकर गीत-कविता।

कविता संवत्—१६८५।

आश्रयदाता महाराजा जगतसिंह उदयपुर और म० रा० गज-सिंह जोधपुर।

(२८३) सदानन्द ।

इस कवि के केवल तीन छन्द हमने देखे हैं। इसके जीवन-चरित्र का हमें कुछ भी वृत्तान्त ज्ञात न हो सका, पर इसका समय संवत् १६८५ के आस पास है।

इसकी कविता सरस और अच्छी है। हम इसकी गणना साधारण श्रेणी में करते हैं।

उदाहरण ।

सोहै सेत सारी मंजु मोतिन किनारी वारी
भीर मैं निहारी जात संग सखियान के।
सदानन्द सुन्दरी न कोऊ यह रूप जाके
आनन की आभा सी न आभा ससि भान के॥
दृगन की कोर लागी कानन की छोर जैसी
भृकुटी मरोर जोर जोरे धनुबान के।
धीरी चालवारी मुख बीरी लालवारी
वह पीरी सालवारी रहै नोरी अँखियान के॥

(२८४) मलूकदास ब्राह्मण कड़ा मानिकपूर निवासी थे। इनका समय सरोज में १६८५ लिखा है, परन्तु कोई ग्रंथ इनका हमारे देखने में नहीं आया। इनकी कविता बड़ी मनमोहिनी है। हम इनकी गणना तोष की श्रेणी में करते हैं।

चंद कलंकी कहा करिहै सरि कोकिल कीर कपोत लजाने।
बिद्रुम हेम करी अहि केहरि कंज कली औ अनार के दाने॥
मीन सरासन धूम की रेख मलूक सरोवर कम्बु भुलाने।
ऐसी भई नहिँ है भुव मेँ नहिँ होइगी नारि कहा कबि जाने॥१॥

अलंकार छंद काव्य नाटक अगार राग
रागिनी भँडार बरबानी को निवास है।
कोक कारिका बिख्यात पंकज को कोस
मानौं निकसत जामैं भाँति भाँति को सुबास है॥
फूल से भरत बानी बोलत मलूक प्यारी
हँसनि मैं होत दामिनी को परकास है।
ऐसो मुख काको पटतर दीजै प्यारे लाल
जामैं कोटि कोटि हाव भाव को बिलास है॥२॥

(२८५) दामोदर स्वामी हितहरिवंश की अनन्य सम्प्रदाय के थे। इन्होंने संवत् १६८७ में 'नेमबत्तीसी' बनाई। इनके बनाये हुए नेमबत्तीसी, रेखता, भक्तिसिद्धान्त, रासविलास और स्वयंगुरुप्रताप नामक ग्रन्थ हमने छत्रपूर में देखे। इनकी कविता अच्छी होती थी। हम इन्हें साधारण श्रेणी में समझते हैं।

उदाहरण।

श्री हरिवंश कृपाल लाल पद पंकज ध्याऊँ।
वृन्दावन में बसौं सीस रसिकन को नाऊँ॥
अँचऊँ जमुना नीर जीव राधापति गाऊँ।
नैननि निरखौं कुंज रेनु या तन लपटाऊँ॥

कहुँ झूठ न बोलौं सति कहौं निन्दा सुनौं न कान ।
नित पर जुवती जननी गनौं पर धन गरल समान ॥

(२८६) कवीन्द्राचार्य सरस्वती ब्राह्मण ।

इन महाशय ने शाहजहाँ बादशाह-देहली की प्रशंसा में "कवींद्रकल्पलता" नामक ग्रंथ बनाया, जिसमें कुल १५० छन्दों द्वारा उक्त बादशाह व उसके पुत्रों इत्यादि की प्रशंसा की गई है। शाहजहाँ का समय संवत् १६८३ से १७१४ तक है। इसी के बीच में यह ग्रंथ बना होगा। सम्भवतः कवि जी का जन्म-काल सं० १६५० के लगभग होगा। सं० १६८७ में समरसार नामक इनका द्वितीय ग्रन्थ बना। इस विचार से ये महाशय तुलसीदास जी के समकालीन ठहरते हैं। सरोज में इनका संवत् १६२२ दिया हुआ है, जब शायद शाहजहाँ वा इनका स्वयं जन्म भी न हुआ हो। ये महाराज संस्कृत के भी पूर्ण विद्वान् थे। इनकी सानुप्रास भाषा में व्रज और अवध की बोलियों का कुछ कुछ मिश्रण है और वह ललित है। हम इनको पद्माकर जी की श्रेणी में रखते हैं। उदाहरण लीजिए:—

मंदर ते ऊँचे मनि मन्दिर प सुन्दर हैं
मेदिनी पुरन्दर को पुर दरसत है।
हिय में हुलास होत नगर विलास लखि
रूप कयलास हू ते अति सरसत है॥
दुंदुभि मृदंग नाद विविध सुबाद जहाँ
साहिजहाँबाद अति सुख बरसत है।

छहौ ऋतु छाई छाजै आछो छवि देखन को
मानुष की कहा कहै इन्द्र तरसत है॥

इन्होंने संस्कृत की भी अच्छी कविता की है। योगवाशिष्ठसार नामक इनका एक और ग्रन्थ खोज में मिला। काशी-वासी थे।

नाम—(२८७) माधुरीदास।

ग्रन्थ—(१) श्रीराधारमण बिहारी माधुरी, (२) बंसीबट बिलास माधुरी, (३) उत्कंठा माधुरी, (४) वृन्दावन केलि माधुरी, (५) दानमाधुरी, (६) मानमाधुरी, (७) वृन्दावनबिहार माधुरी, (८) मानलीला।

कविता-काल—१६८७।

विवरण—मधुसूदनदास श्रेणी। इस कवि ने इन छोटे छोटे ग्रन्थों में कृष्णयशगान किया है।

उदाहरण।

जुगुल प्रेम के दान हित कियो जुगुल अवतार।
आप भक्ति आवरन करि जग कीनो विस्तार॥

निसि दिन तिनकी कृपा मनाऊँ। नित वृन्दावन वासहि पाऊँ॥
पिय प्यारी की लीला गाऊँ। जुगुल रूप लखि लखि बलि जाऊँ॥

(२८८) सुन्दर ब्राह्मण ग्वालियर वासी शाहजहाँ बादशाह के दरबार में थे। शाह ने इन्हें प्रथम कबिराय की और फिर .. कविराय की उपाधि दी। इन्होंने संवत् १६८८ में सुन्दर-

शृंगार नामक नायिकाभेद का ग्रन्थ बनाया, जिसमें उपर्युक्त बातें लिखी हैं। सिंहासनबत्तीसी नामक इनका एक दूसरा ग्रन्थ भी है। खोज में ज्ञानसमुद्र नामक ग्रन्थ भी इनके नाम लिखा है, पर वह सुन्दरदास दादूपन्थी का जान पड़ता है। इनकी कविता परम मनोहर और यमकयुक्त है। हम इन्हें तोष की श्रेणी में रक्खेंगे।

उदाहरण ।

काके गये बसन पलटि आये बसन
सुमेरो कछु बस न रसन उर लागे हो ।
भौंहैं तिरिछोहैं कवि सुन्दर सुजान सोहैं
कछू अलसोहैं गोहैं जाके रस पागे हो ॥
परसैं में पायँ हुते परसैं मैं पायँ गहि
परसैं ये पायँ निसि जाके अनुरागे हो ।
कौन बनिता के हौजू कौन बनिता के
हौसु कौन बनिताके बनि ताके संग जागे हो ॥

'बारहमासी' नामक इन का एक और ग्रन्थ है।

(२८६) पुहकर कवि ।

ये जाति के कायस्थ भूमिगाँव गुजरात सोमनाथजी के पास रहते थे। संवत् १६८१ में जहाँगीरशाह के समय में कहा जाता है कि ये आगरे में क़ैद हो गये थे, जहाँ जेलख़ाने में इन्होने रसरतन नामक ग्रन्थ बनाया, जिस पर प्रसन्न होकर जहाँगीरशाह ने इन्हें

कारागार से मुक्त कर दिया। इसमें रेभावती व सूरकुमार की कथा बड़े विस्तार से वर्णन की गई है। ग्रन्थ में ब्रज भाषा और कहीं कहीं प्राकृत मिश्रित भाषा का प्रयोग है। छन्द बहुत प्रकार के हैं, परन्तु दोहा एवं चौपाइयों की प्रधानता है। कुल २७६६ छन्दों व ५५६ पृष्ठों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। कविता अच्छी है। हम इनको छत्र की श्रेणी में रखते हैं।

उदाहरणः—

चले मत्त मैमंत झूमंत मत्ता, मनौ बद्दला स्याम माथै चलंता।
बनी बागरी रूप राजंत दंता, मनौ बग्ग आषाढ़ पाँतैं उदंता॥
लसैं पीत लालै सुढालैं ढलक्कैं, मनौं चंचला चौंधि छाया छलक्कैं।

कवित्त।

चन्द की उजारी प्यारी नैनन निहारी
परै चन्द की कला मैं दुति दूनी दरसाति है।
ललित लतानि मैं लतासी गहि सुकुमारि
मालती सी फूलै जब मृदु मुसुकाति है॥
पुहकर कहै जित देखिए विराजै
तित परम विचित्र चारु चित्र मिलि जाति है।
आवै मनमाहिँ तब रहै मनही मैं
गड़ि नैननि विलोके बाल बैननि समाति है॥

इनकी पुस्तक हमने दरबार छतरपूर में देखी। खोज से पता चलता है कि यह परतापपूर ज़िला मैनपुरी के थे।

(२९०) जोयसी कवि का रचनाकाल १६८८ है। ये महाशय तोष कवि की श्रेणी में हैं। इनका सिर्फ़ एकही छंद मिलता है जो परम विशद है।

रुचि पाँय झवाँय दई मेंहँदी तेहि को रँगु होत मनो नगु है।
अब ऐसे में श्याम बुलावैँ भटू कहु जाँउँ क्यों पंकु भयो मगु है॥
अधराति अँध्यारी न सूझे गली भनि जोयसी दूतिन को सँगु है।
अब जाउँ तै। जात धुयो रँगुरी रँगु राखौं तै। जात सबै रँगु है॥

(२९१) लूणसागर जैनी पंडित ने संवत् १६८९ में ज्ञान विषय का अजनासुन्दरीसंवाद नामक ग्रन्थ रचा।

(२९२) चिन्तामणि त्रिपाठी।

महाराज रत्नाकर के चार पुत्रों में ये महाशय सब से बड़े थे। इन के तीन भाई भूषण, मतिराम श्रोर जटाशंकर थे। इन के ग्रन्थों से इन की उत्पत्ति के संवत् का ठीक पता नहीं लगता। भूषण की कविता से हमने निष्कर्ष निकाला है कि उन का जन्म-काल संवत् १६७० के लगभग था। इस विचार से चिन्तामणि का जन्म-काल संवत् १६६६ के लगभग मानना चाहिए।

ये महाशय तिकवाँपूर ज़िला कानपूर के वासी थे। इस मौज़े का वर्णन भूषण की समालोचना में है। ठाकुर शिवसिंहजी ने लिखा है कि चिन्तामणि जी "बहुत दिन तक नागपुर में सूर्य्यवंशी भोंसला मकरन्द शाह के यहाँ रहे श्रोर उन्हीं के नाम 'छन्दविचार' नामक पिंगल बहुत भारी ग्रन्थ बनाया, श्रोर 'काव्यविवेक', कविकुल-

कल्पतरु, काव्यप्रकाश, 'रामायण' ये पाँच ग्रन्थ इनके बनाये हुए हमारे पुस्तकालय में मैाजूद हैं। इन की बनाई रामायण कवित्त और नाना अन्य छन्दों में बहुत अपूर्व है। बाबू रुद्रसाहि सुलंकी, शाहजहाँ बादशाह, और जैनदी अहमद ने इन को बहुत दान दिये हैं। इन्हों ने अपने ग्रन्थ में कहीं कहीं अपना नाम मणिमाल भी कहा है।" हमारे पुस्तकालय में इन का केवल कविकुल-कल्पतरु ग्रन्थ है, जिस में काव्य गुण, श्लेष, अलंकार (शब्द एवं अर्थ), दोष, पदार्थनिर्णय, ध्वनि, भाव, रस, भावाभास, और रसाभास का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इन्हों ने इस ग्रन्थ में लिखा है कि इन का एक पिंगल भी है। अतः इन्हों ने प्रायः दशांग कविता पर रीति ग्रन्थ लिखे हैं। इन का बनाया पिंगल हमने देखा भी है और वह शिवसिंह सेंगर के पुस्तकालय में है। रसमंजरी नामक एक और ग्रन्थ इन का खोज में लिखा है। इन की भाषा-साहित्य के आचार्य्यों में गणना है।

चिन्तामणि की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है; केवल दो एक स्थानों पर इन्होंने प्राकृत में भी कविता की थी। ये महाराज बड़ी ही मधुर एवं सानुप्रास भाषा प्रयोग करने में समर्थ हुए हैं। इन्होंने बहुत विषयों पर रचना की है ओर ये सदैव उत्कृष्ट कविता रच सके हैं। ठाकुर शिवसिंहजी के सरोज में दिये हुए इन के अन्य ग्रन्थों के उदाहरण देखने से विदित होता है कि कल्पतरु के अतिरिक्त इन के वे ग्रन्थ भी बढ़िया हैं। इनका बड़े बड़े महाराजाओं के यहाँ अच्छा मान रहा। इन को हम दास जी की श्रेणी में रखते हैं। इन की कविता के उदाहरणार्थ कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं।

चिन्तामणि कच कुच भार लंक लचकति
सोहे तन तनक बनक छबि खान की।
चपल बिलास मद आलस वलित नैन
ललित बिलोकनि लसनि मृदु बान की॥
नाक मुकुताहल अधर रंग संग लीन्हीं
रुचि संध्या राग नखतन के प्रभान की।
बदन कमल पर अलि ज्यों अलक लोल
अमल कपोलनि झलक मुसक्यान की॥

इक आजु मैं कुन्दन वेलि लखी मनि मन्दिर की रुचि वृन्द भरै।
कुरबिन्दु को पल्लव इन्दु तहाँ अरबिन्दन ते मकरन्द झरै॥
उत बुन्दन के मुकुता गन ह्वै फल सुन्दर द्वै पर आनि परै।
लखि यों दुति कन्द अनन्द कला नँद नन्द सिलाद्रव रूप धरै॥
एई उधारत हैं तिन्हैं जे परे मोह महोदधि के जल फेरे।
जे इन को पल ध्यान धरैं मन ते न परैं कबहूँ जम घेरे॥
राजै रमा रमनी उपधान अभै बरदानि रहै जन नेरे।
हैं बल भार उदंड भरे हरि के भुज दंड सहायक मेरे॥

(२६३) बेनी।

ये महाशय असनी के बन्दीजन थे। इनका समय १६९० के आस पास कहा जाता है। इनका एक ग्रन्थ शिवसिंहजी ने देखा था पर हमने नहीं देखा। स्फुट कवित्त इनके बहुतायत से देखने और सुनने में आये हैं। जान पड़ता है कि इन्होंने नखशिख अथवा षटऋतु पर ग्रन्थ-निर्माण किया है। इनकी भाषा साधारण है और

जमक का इन्हें विशेष ध्यान रहता था। ब्रह्म कवि की भाँति एक उपमा कहने के ही लिए यह भी कभी कभी कवित्त बना डालते थे। यह गोस्वामी तुलसीदास जी के बड़े भक्त थे और उनके रामायण ग्रन्थ की प्रशंसा में एक कवित्त इन्होंने बनाया है, जो उत्तम न होने पर भी विख्यात है। इसी नाम के एक अन्य बन्दीजन महाशय भी हैं, जिनके दो ग्रन्थ हमने देखे हैं और जो भँड़ौवा अधिक बनाते थे। पहले तो हमें सन्देह था कि ये दोनों महाशय एकही होंगे, परन्तु इन बेनी के छन्द बेनी भँड़ौवाकार के ग्रन्थों में नहीं पाये जाते और शिवसिंह जी ने भी इन्हें दो मनुष्य माना है। अतः हम भी इन्हें दो समझते हैं। दूसरे बेनी अपने को प्रायः बेनी कवि कहते थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने अपने सुन्दरीतिलक में पहला सवैया इन्हीं का देकर इनका आदर किया है। हम इन्हें पद्माकर की श्रेणी का कवि मानते हैं।

उदाहरण :—

छहरैं सिर पै छवि मोर पखा उनकी नथ के मुकता थहरैं।
फहरै पियरो पट बेनी इतै उनकी चुनरी के झवा झहरैं॥
रसरंग भिरे अभिरे हैं तमाल दोऊ रस ख्याल चहैं लहरैं।
नित ऐसे सनेह सों राधिकाश्याम हमारे हिये में सदा ठहरैं॥१॥
कवि बेनी नई उनई है घटा मोरवा वन बोलत कूकन री।
छहरै बिजुरी छिति मंडल छ्वै लहरै मन मैन भभूकन री॥
पहिरौ चुनरी चुनि कै दुलही सँग लाल के झूलहु झूकन री।
ऋतु पावस योंहीं बितावती हौ मरिहौ फिरि बावरी हूकन री॥२॥

(२६४) बनवारी संवत् १६९० के लगभग हुए। इन्होंने महाराजा जसवंतसिंह के बड़े भाई अमरसिंह की प्रशंसा की। शाहजहाँ के दरबार में सलाबत ख़ाँ ने अमरसिंह को गँवार कह दिया था। इसी पर क्रुद्ध होकर उन्होंने उसको दरबार ही में मार डाला, जिसकी तारीफ़ में बनवारी ने नीचे लिखे छन्द कहे। इनकी शृंगार रस की कविता भी बड़ी उत्तम तथा सानुप्रास होती थी। इनकी गणना पद्माकर कवि की श्रेणी में की जाती है।

उदाहरण।

धन्य अमर छिति छत्रपति अमर तिहारो मान।
साहजहाँ की गोद में हन्यो सलाबत खान ॥१॥
उत गँवार मुख ते कढ़ी इत निकसी जमधार।
वार कहन पाये नहीं कीन्हो जमधर पार ॥२॥
आनि कै सलाबत खाँ जोर कै जनाई बात
तोरि धर पंजर करेजे जाय करकी।
दिलीपतिसाह को चलन चलिबे को भयो
गाज्यो गजसिंह को सुनी है बात बर की॥
कहै बनवारी बादसाहि के तखत पास
फरकि फरकि लोथि लोथिन सों अरकी।
करकी बड़ाई कै बड़ाई बाहिबे की करैां
बाढ़ि कि बड़ाई कै बड़ाई जमधर की ॥३॥
नेह बरसाने तेरे नेह बरसाने देखि
यह बरसाने बर मुरली बजावैंगे।

साजु लाल सारी लाल करैं लालसा री
देखिवे की लालसा री लाल देखे सुख पावैंगे॥
तूही उर बसी उर बसी नहिँ और तिय
कोटि उरबसी तजि तोसों चित लावैंगे।
सेज बनवारी बनवारी तन आभरन
गोरे तनवारी बनवारी आजु आवैंगे॥४॥

(२६५) जसवन्तसिंह (महाराजा माड़वार)।

महाराजा जसवन्तसिंह का जन्म संवत् १६८२ में हुआ था। ये महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम अमरसिंह था। संवत् १६९१ में महाराजा गजसिंह ने अपने बड़े पुत्र के उद्धत स्वभाव के कारण उसे अराजक करके देश से निकाल दिया। महाराजा जसवन्तसिंह अपने पिता के स्वर्गवास होने पर संवत् १६९५ में सिंहासनारूढ़ हुए। महाराजा जसवन्तसिंह के राज्य से मूर्खता और अज्ञान निकल गये और उसमें विद्या का पूर्ण सत्कार हुआ। इतिहास में लिखा है कि इनके लिए न जाने कितनी पुस्तकें बनाई गईं। ये महाराज मध्य प्रदेश में बादशाह की ओर से लड़े थे। फिर ये महाशय मालवा के गवर्नर बनाये गये। जब औरंगज़ेब ने राज्य पाने को विद्रोह किया, तब ये शाही दल के सेनापति नियत हुए। औरंगज़ेब ने शाही दल को पराजित करके जसवन्तसिंह को गुजरात का गवर्नर कर दिया। फिर वहाँ से शाइस्ता ख़ाँ के साथ ये महाराज शिवाजी से लड़ने को दक्षिण भेजे गये। वहाँ इन्होंने हिन्दू धर्म्म का पक्ष किया और छिपे

छिपे शिवाजी से मिलकर शाइस्ता ख़ाँ के दल की दुर्गति करा डाली। वहाँ से ये औरंगज़ेब की ओर से अफ़गानों को जीतने के निमित्त काबुल भेजे गये। वहीं संवत् १७३८ में इनका शरीरपात हुआ।

ये महाशय भाषा के बहुत अच्छे कवि थे। इनके भाषाभूषण के अतिरिक्त निम्न लिखित ग्रन्थ हैं:—१ अपरोक्षसिद्धांत, २ अनुभवप्रकाश, ३ आनंदविलास, ४ सिद्धांतबोध, ५ सिद्धांत सार, ६ प्रबोधचंद्रोदय नाटक। भाषाभूषण को छोड़कर इनके शेष ग्रन्थ वेदांत के हैं। इन्होंने भाषाभूषण नामक २६१ दोहों में रीति का बड़ाही उत्तम ग्रन्थ बनाया। इसमें इन महाराज ने प्रथम भाव भेद कहा, परन्तु उसके अंगों के उदाहरण न देकर केवल लक्षण दिये। उसके पीछे अर्थालंकारों का ग्रन्थ में बड़ा उत्तम वर्णन है। अर्थालंकारों में इन्होंने लक्षण और उदाहरण दोनों दिये हैं। सब से प्रथम अलंकारों का ग्रन्थ कृपाराम ने और फिर महाकवि केशवदास ने संवत् १६५८ में बनाया। यह ग्रन्थ कविप्रिया है। परन्तु केशवदास भरत मतानुसार नहीं चले। उनके पश्चात् सब से प्रथम अलंकारों ही का वर्णन महाराज जसवन्तसिंह ने किया। जिस प्रकार इन्होंने अर्थालंकार कहे हैं, उसी रीति से वे अब भी कहे जाते हैं। इस ग्रन्थ के कारण ये महाराज भाषालंकारों के आचार्य्य समझे जाते हैं। यह ग्रन्थ अद्यावधि अलंकारों के ग्रन्थों में बहुत पूज्य दृष्टि से देखा जाता है। माड़वार (जोधपूर) के राजकवि मुरारिदान के जसवन्तजसोभूषण से भी विदित होता है कि भाषाभूषण वास्तव में इन्हीं महाराज का बनाया हुआ है (देखिए उसका पृष्ठ नं० १४)।

इस ग्रन्थ की टीका दलपतिराय बंसीधर ने संवत् १७९२ में की। इस टीका का नाम अलंकाररत्नाकर है। जिज्ञासु के लिए अब भी यह प्रायः सर्वोत्तम ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ इस समय हमारे पास मैाजूद है। भाषाभूषण का दूसरा तिलक प्रसिद्ध कवि परताप साहि ने बनाया। यह अभी हमारे देखने में नहीं आया, परन्तु परताप की काव्यनिपुणता से हमें निश्चय है कि यह टीका भी परमोत्तम होगी। भाषाभूषण की तृतीय टीका कवि गुलाब ने भूषणचन्द्रिका ग्रन्थ द्वारा बनाई। यह टीका भी हमारे पास वर्त्तमान है और बहुत अच्छी बनी है।

महाराजा जसवन्तसिंह को अलंकारों का भारी आचार्य्य समझना चाहिए। इन्हीं की रीति पर अन्य कवि चले हैं। इनकी कविता भी परम मनोहर है। बड़े सन्तोष की बात है कि इन्होंने बड़े महाराज होकर भी भाषा का इतना आदर किया कि स्वयं काव्यरचना की और भाषाभूषण सा उत्तम ग्रन्थ रचा। यह हिन्दी के लिए बड़े सैाभाग्य की बात है।

उदाहरण।

मुख ससि वा ससि सों अधिक उदित जोति दिन राति।
सागरते उपजी न यह कमला अपर सोहाति॥
नैन कमल ए ऐन हैं और कमल केहि काम।
गमन करत नीकी लगै कनक लता यह वाम॥
धरम दुरै आरोप ते सुद्धापन्हुति होय।
उर पर नाहिँ उरोज ये कनक लता फल दोय॥
परजस्ता गुन और को और विषे आरोप।

होय सुधाधर नाहिँ यह बदन सुधाधर ओप॥

हम इन्हें दास की श्रेणी में रखते हैं।

नाम—(२९६) नीलकंठ त्रिपाठी उपनाम जटाशङ्कर, भूषण के भाई।

ग्रन्थ—अमरेशविलास (१६९८)।

कविताकाल—१६९८।

विवरण—इन्होंने जमक पूर्ण उत्तम कविता की है। हम इन्हें तोष की श्रेणी में रक्खेंगे। अपने भाइयों में ये सब से छोटे थे।

उदाहरण।

तन पर भारतीन तन पर भारतीन
　　तन पर भारतीन तन पर भार हैं।
पूजैं देवदार तीन पूजैं देवदार तीन
　　पूजैं देवदार तीन पूजैं देवदार हैं॥
नीलकंठ दारुन दलेल खाँ तिहारी धाक
　　नाकतीं न द्वार ते वै नाकतीं पहार हैं।
आँधरेन कर गहे बहिरे न संग रहे
　　बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार हैं॥

(२९७) ताज।

ये कोई मुसलमान जाति की स्त्री थीं। इनके वंश, स्थान इत्यादि का कोई ठीक ठीक पता नहीं लगा। कवि गोविन्द गीला भाई के यहाँ इनके सैकड़ों छन्द विद्यमान हैं, पर इनके विषय में कुछ हाल उनको भी नहीं मालूम है। शिवसिंहसरोज में इनका संवत्

१६५२ कहा गया है, और मुन्शी देवीप्रसाद ने संवत् १७०० के लग भग इनका समय लिखा है। इनकी कविता बहुत ही सरस और मनोहर है। ये अपनी धुन की बहुत ही पक्की थीं। रसखानि की भाँति ये भी श्रीकृष्णचन्द्रजी की भक्ति में ख़ूब रँगी थीं। इनकी भक्ति का परिचय इनकी कविता से मिलता है। इनकी भाषा पंजाबी और खड़ी बोली मिश्रित है, जो आदरणीय है। जान पड़ता है कि ये पञ्जाब के तरफ़ की हैं। इनको हम तोष कवि की श्रेणी में रखते हैं। उदाहरणार्थ इनके दो छन्द उद्धृत किये जाते हैं।

सुनो दिल जानी मेड़े दिल की कहानी
　　तुम दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देवपूजा ठानी मैं निवाज हू भुलानी
　　तजे कलमा कुरान साड़े गुनन गहूँगी मैं॥
स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये
　　तेरे नेह दाग मैं निदाग हो दहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान तांड़ी सूरत पै
　　तांड़ नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूँगी मैं॥
छैल जो छबीला सब रङ्ग में रँगीला
　　बड़ा चित्त का अड़ीला कहूँ देवतों से न्यारा है।
माल गले सोहै नाक मोती सेत सोहै कान
　　मोहै मन कुंडल मुकुट सीस धारा है॥
दुष्ट जन मारे सतजन रखवारे ताज
　　चित हित वारे प्रेम प्रीति कर वारा है।

नन्दजू का प्यारा जिन कंस को पछारा
वह वृन्दावन वारा कृष्ण साहेब हमारा है ॥

नाम—(२९८) शिरोमणि ब्राह्मण।

रचना—कई ग्रन्थ।

समय—१७०० लगभग।

विवरण—शाहजहाँ बादशाह के दरबार में थे। साधारण श्रेणी का काव्य है।

उदाहरण देखिए।

सागर के पार जुद्ध माच्यो राम रावनहि
सिरोमनि भारी घमसान यक बार भो।
घुमत घायल जहाँ अलल अलल बोलैं
बलल बलल बहै लोहू यक तार भो ॥
छिन छिन छूटत पनारे रतनारे भारे
नारे खोरे मिलि कै समुद्र यक सार भो।
बूड़ि गयो बैल व्याल नायक निकरि गयो
गिरि गई गिरिजा गिरीस पैरि पार भो ॥

इस समय के अन्य कवि गण।

नाम—(२९९) केशवदासचारण।

ग्रन्थ—(१) महाराज गजसिंह का गनरूपकवन्ध, (२) विवेक-वार्त्ता।

रचना-काल—१६८१।

नाम—(३००) बल्लभदास साधु।

ग्रन्थ—(१) सेवक वानीकौ सिद्धान्त, (२) स्फुट भजन।

रचनाकाल—१६८१ के लगभग।

विवरण—राधावल्लभी।

नाम—(३०१) हेमराज।

ग्रन्थ—१ नय चक्र, २ भक्त स्तोत्र भाषा।

जन्म-संवत्—१६६०।

रचना-काल—१६८४।

नाम—(३०२) खरगसेन कायस्थ ग्वालियर वाले।

ग्रन्थ—(१) दानलीला, (२) दीपमालिका-चरित्र।

जन्म-संवत्—१६६०।

रचना-काल—१६८५।

नाम—(३०३) छेमराम।

ग्रन्थ—फ़तेहप्रकाश।

जन्म-संवत्—१६५७।

रचना-काल—१६८५।

नाम—(३०४) जगतसिंह राणा।

ग्रन्थ—जगद्विलास।

रचना-काल—१६८५ से १७११ तक।

विवरण—ये महाराजा-मेवाड़ कवियों के प्रेमी थे। जगद्विलास इनके समय में एक भाट ने बनाया, जिसका नाम नहीं मालूम है।

नाम—(३०५) जगनंद वृन्दावनवासी।

जन्म-संवत्—१६५८।

रचना-काल—१६८५।

विवरण—इनके कवित्त हज़ारा में हैं। निम्न श्रेणी।

नाम—

ग्रन्थ—वृन्दावनस्तव।

रचना-काल—१६८६।

विवरण—यह ग्रन्थ १११ दोहाओं का है। इसे हमने छत्रपूर में देखा है, पर इसके रचयिता का नाम नहीं मिला।

नाम—(३०६) जनमुकुन्द।

ग्रन्थ—१ भवरगीत, २ ध्रुवगीता।

रचना-काल—१६८७।

विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(३०७) मुकुटदास।

ग्रन्थ—भगतविरदावली।

रचना-काल—१६८७।

नाम—(३०८) मोहनदास कायस्थ कुरसट हरदोई।

ग्रन्थ—१ स्नेहलीला, २ स्वरोदय-पवनविचार, ३ पवन-विजय-स्वरशास्त्र।

रचना-काल—१६८७।

नाम—(३०९) रसराम।

ग्रन्थ—मददीपिका।

रचना-काल—१६८७।

नाम—(३१०) गोकुलविहारी।

जन्म-संवत्—१६६०।

रचना-काल—१६९०।

विवरण—निम्न श्रेणी।

नाम—(३११) परशुराम ब्रजवासी।

ग्रन्थ—वैराग्यनिर्णय।

जन्म-संवत्—१६६०।

रचना-काल—१६९०।

विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(३१२) हरिनाथ महापात्र।

ग्रन्थ—स्फुट छन्द।

रचना-काल—१६९०।

विवरण—यह कवि शाहजहाँ बादशाह का कृपापात्र था। ये नरहरि के पुत्र थे। इनके विषय यह दोहा प्रसिद्ध है।

दान पाय दोई बढ़े की हरि की हरिनाथ।
उन बढ़ि नीचे कर कियो इन बढ़ि ऊँचे हाथ॥

इसी दोहे पर प्रसन्न होकर इन्होंने एक लाख से अधिक की सम्पत्ति दोहा बनानेवाले को देदी थी।

नाम—(३१३) रघुनाथराय।

रचना-काल—१६९१।

विवरण—राजा अमरसिंह जोधपुर वाले के यहाँ थे। साधारण कवि थे।